भारत में शिक्षा नीति का विकास और सरकारी पहलों पर इसका प्रभाव

हृदय कान्त दीवान

परिचय

औपचारिक शिक्षा ने मौजूदा समाजों की चेतना में एक महत्त्वपूर्ण स्थान हासिल किया है। अब यह बात स्पष्ट रूप से मान ली गई है कि समुदाय में उपलब्ध शिक्षा से परे भी शिक्षा की आवश्यकता है और इस उद्देश्य के मद्देनज़र व्यवस्थाएँ भी की गई हैं। सभी को शिक्षित करने का अभियान और प्रतिबद्धता स्वतंत्रता आन्दोलन की राजनीतिक प्रतिबद्धता के साथ-साथ सामाजिक सुधारकों और कार्यकर्ताओं के प्रमुख एजेंडा का हिस्सा भी रही है। इसे उपलब्ध कराने की प्रकृति और तरीक़े ने कई प्रारूप और फ़ोकस क्षेत्रों को देखा है। आज़ादी से पहले नीति और प्राथमिकताओं का निर्णय लेने और उन पर काम करने की संरचनाएँ अपने आप में दिलचस्प हैं, लेकिन यहाँ हम दो प्रमुख नीति वक्तव्यों, 1968 की नीति और 1986 की नीति, उनकी भावना और उनके द्वारा उत्पन्न क्रियाकलापों के कार्यक्रमों को देखेंगे। इसके बाद हम एक नए नीति वक्तव्य को तैयार करने के हाल में किए गए प्रयासों को संक्षेप में देखेंगे। नीति के इस शोध और विश्लेषण में प्रचुर सम्भावनाएँ हैं, लेकिन इस लेख का मूल उद्देश्य 90 के दशक से किए गए सार्वजनिक (पढ़ें सरकार) प्रयासों, योजनाओं और कार्रवाई की पृष्ठभूमि प्रदान करना है। 1992 में की गई कार्रवाई के प्रथम व्यापक कार्यक्रम के बाद गहन सरकारी हस्तक्षेप और इससे पहले अर्ध-सरकारी हस्तक्षेपों ने लोगों का ध्यान खींचा और शिक्षा की संरचना और परिवर्तन के लिए रूपरेखा बनाई।

हम 1966 की कोठारी कमीशन रिपोर्ट से शुरुआत करते हैं जिसमें से 1968 में राष्ट्रीय नीति का वक्तव्य उभरा। इस रिपोर्ट को भारत में शिक्षा का पहला व्यापक विवरण माना जाता है और यह एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसका हवाला सभी नीतियों और कार्यक्रमों ने दिया है। हम इस दस्तावेज़ पर आधारित कार्रवाई की रूपरेखाओं के माध्यम से इसमें बताए गए कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं का पता लगाएँगे। शुरुआत हम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 से करेंगे, (जिसे 1992 में संशोधित किया गया था) और एक नई शिक्षा नीति के गठन की वर्तमान प्रक्रिया तक जाएँगे। नई शिक्षा नीति का गठन लगभग तीन साल से हो रहा है, बीच-बीच में सार्वजनिक प्रक्षेत्र में इनपुट की माँग की जाती है और दस्तावेज़ व फ़ोकस के चयन जारी किए जाते हैं, लेकिन नीति अभी भी निर्माणाधीन है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के कुछ महत्त्वपूर्ण तत्व, 1992 में संशोधित

एक शिक्षित नागरिक वर्ग बनाने के प्रयास के लिए एक बहु-आयामी जटिल दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है, इस बात को ध्यान में रखते हुए हम कुछ ऐसे पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित करेंगे जिन्हें एक न्यायसंगत, साम्यतापूर्ण और लोकतांत्रिक समाज की संवैधानिक प्रतिबद्धता को पूरा करने के लिए महत्त्वपूर्ण माना जाता था। 1968/1992 का पहला व्यापक नीति वक्तव्य कोठारी आयोग की रिपोर्ट पर आधारित था और उस समय की भावना को प्रतिबिम्बित करता था। यह बच्चों और वयस्कों को शिक्षित करने और लोकतांत्रिक देश के नागरिकों के रूप में विकसित करने में उनकी मदद करने पर केन्द्रित था। हम ऐसे चार पहलुओं को लेंगे जो हमारे विचार में इस प्रतिबद्धता को पूरा करने के इरादे का आधारभूत ढाँचा प्रदान करते हैं और देखेंगे कि सरकार द्वारा की गई बाद की पहलों में उनका प्रबन्धन कैसे किया गया है और उन्हें किस तरीक़े से दर्शाया गया है। जिन क्षेत्रों पर हम विचार करेंगे वे इस प्रकार हैं :

1. शिक्षा का उद्देश्य और मानव और नागरिक की धारणा
2. शिक्षक - उनकी भूमिका, स्वायत्तता, सम्मान और पहचान
3. मानव विकास और उनके जीवन की गुणवत्ता में सुधार के साधन के रूप में विज्ञान और प्रौद्योगिकी बनाम औद्योगिक और बाज़ार के उपयोग के लिए अपने आप में एक लक्ष्य
4. सार्वजनिक ज़िम्मेदारी के साथ समान स्कूल और साम्यता और, इन विचारों के अन्तर्गत, घर की असमानताओं की भरपाई करने वाली स्कूल की नीति की आवश्यकता।

यह समीक्षा नीति के आलेख में वर्णित कुछ बुनियादी तत्वों की परिभाषाओं पर भी चर्चा करेगी जैसे स्कूल, शिक्षक और ज़िम्मेदारियों की धारणा। इस चर्चा में अभिशासन की प्रकृति, प्रबन्धन और शिक्षा की व्यवस्था के साथ जवाबदेही के सिद्धान्त भी सन्निहित हैं। इसके अलावा इन मुद्दों पर भी बात की गई है कि व्यापक और विशिष्ट पाठ्यचर्या के बारे में किसे निर्णय लेना चाहिए और शिक्षकों का मार्गदर्शन कौन करे। कार्य योजनाओं का निर्धारण और कार्यान्वयन कैसे

किया जाता है? यह चर्चा सरकार द्वारा शुरू किए गए मिशन, योजनाओं और अन्य घोषणाओं का विवरण देगी।

शिक्षा का उद्देश्य

1992 में संशोधित 1968 की नीति में शिक्षा को परिवर्तन का एक ऐसा साधन माना गया जो हर किसी तक पहुँच सकता है और बिना किसी हिंसा के दूसरों के लिए सरोकार रखते हुए समाजवादी भावना का सूत्रपात करने में मदद कर सकता है। इसमें लक्ष्यों का उल्लेख करते हुए विशेष रूप से कहा गया है कि एक लोकतांत्रिक समाज में, सामाजिक परिप्रेक्ष्य के माध्यम से, आर्थिक और सामाजिक विकास के लिए शिक्षा एक ज़रूरी लक्ष्य है। व्यक्ति को एक नागरिक के रूप में देखा जाता है, जो देश का एक संविधानी तत्व है।

हम उद्धरण देते हैं :

'लोकतंत्र में व्यक्ति अपने आप में लक्ष्य होता है और शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य उसे अपनी क्षमताओं को पूर्ण रूप से विकसित करने का अति व्यापक अवसर प्रदान करना है। लेकिन इस लक्ष्य का मार्ग सामाजिक पुनर्गठन और सामाजिक दृष्टिकोण से होकर गुज़रता है।'

इस बात को आगे बढ़ाने के लिए तर्क दिया गया कि व्यक्तिगत संतृप्ति तक सामूहिक भावना के माध्यम से ही पहुँचा जा सकता है न कि व्यक्तिगत या सामूहिक हितों की संकीर्ण तलाश के माध्यम से। इसमें आगाह किया गया है कि यह एक दीर्घकालिक प्रयास है जिसमें कड़ी मेहनत और धैर्य की आवश्यकता है। इरादा स्पष्ट रूप से यही है कि प्रत्येक नागरिक की प्राथमिकता को तो मान्यता देनी ही है और साथ ही सामूहिक भावना के लाभों की आवश्यकता को भी स्वीकार करना है।

1992 में संशोधित 1986 की नीति में 1966 की रिपोर्ट के अधिकांश मूलभूत वक्तव्यों को दोहराया गया लेकिन अभिव्यक्तियों और प्रमुखता की बारीक़ियों ने महत्त्वपूर्ण बदलावों के साथ न्याय नहीं किया। हालाँकि इसमें सभी के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के महत्त्व को पहचाना गया पर यह सीमित था और इसके उद्देश्य कुछ हद तक संकीर्ण थे। नागरिकगण अमूर्त राष्ट्र के विकास के लिए संसाधन बन गए थे, इसलिए अपने आप में कम महत्त्वपूर्ण होते जा रहे थे। ऐसा ध्वनित हो रहा था कि एक समृद्ध स्वायत्त व्यक्ति का विकास करने के माध्यम से पेशों की तैयारी की बात हो रही है, एक बँधी-बँधाई दिनचर्या का पालन करने के लिए ऐसे व्यक्तियों को तैयार करने पर ध्यान केन्द्रित किया गया था जो एक कुशल उत्पादन मशीनरी का हिस्सा बनें। यह विचार संकल्पनात्मक विकास और जीवन के समृद्ध तरीक़े से दूर था और छोटी नौकरियों व विषयों में कुशलता पा लेने को पर्याप्त माना जा रहा था। दूसरे शब्दों में एक बड़े पहिए का दांता बनकर सन्तुष्ट होने की बात की जा रही थी। प्रतिभा आधारित शिक्षा और प्रतिभा के अनुपात में व्यय की धारणा स्वीकार्य हो गई...इस प्रकार किया गया बदलाव एक समान न्यायोचित पहुँच के उद्देश्य और लोकतांत्रिक लोगों के लिए शिक्षा पर ध्यान केन्द्रण से दूर था। शैक्षिक उपक्रम में सभी को शामिल करने के प्रयास को तेज़ कर दिया गया था, साथ ही इसे स्तरीकृत करने का आग्रह और अधिक स्पष्ट हो गया। फ़ोकस स्पष्ट रूप से एक 'कुशल व सक्षम' कार्यबल और एक उपभोक्ता विकसित करने पर था ताकि बाज़ार के विज्ञापन उन तक पहुँचकर उन्हें आकर्षित कर सकें और वे विकास के लिए संसाधन और बाज़ार के लिए उपभोक्ता बन जाएँ।

इसके साथ अन्तर्निहित दृष्टिकोण के कारण बाद के प्रयास भी शिक्षित करने के बजाय कुशलता के विकास की ओर अधिक-से-अधिक प्रवृत्त होने लगे। हालाँकि पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं ने शैक्षिक प्रक्रिया और समानता पर ज़ोर देना जारी रखा लेकिन बजट और योजनाओं में यह बात देखने को नहीं मिली। 1988 में व्यावसायिक शिक्षा माध्यमिक पाठ्यक्रम का एक मान्यता प्राप्त हिस्सा बन गई और स्कूलों में विभेदित शिक्षा को उचित लक्ष्य माना गया। अर्थव्यवस्था के लिए बच्चों की तैयारी के बारे में बातचीत हाशिए से केन्द्र में जाने लगी। ये प्रयास उद्देश्यपूर्ण नहीं बने क्योंकि व्यावसायिक शिक्षा केवल एक ऐसी बदली हुई अर्थव्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था के साथ काम कर सकती है जो क्षमता और कौशल को पहचानने में विश्वास करती हो। इसे ऐसे समाज की आवश्यकता थी जो मज़दूरों को उचित मज़दूरी दे और सभी को इस बात के उचित अवसर दे कि वे जो बनना चाहें वही बन सकें। व्यावसायिक शिक्षा को सार्थक और प्रभावी बनाने के लिए आवश्यक संरचनाओं, प्रक्रियाओं और प्रयासों को कभी चालू नहीं किया गया क्योंकि ग़रीबों और वंचितों की शिक्षा पर खर्च करने की इच्छा का अभाव था। इसलिए हमने कौशल्य और व्यवसायों के बारे में बात तो की लेकिन इसका अर्थ स्तरीकृत धाराओं को वैध बनाना लिया गया।

नई शिक्षा नीति विकसित करने के ताज़ा प्रयास केवल इस प्रवृत्ति पर ज़ोर देते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में नीति सम्बन्धी विवरण शिक्षा को मापने योग्य परिणामों तक ही सीमित रखते हैं और व्यावसायिक शिक्षा को मज़बूत करने को एक महत्त्वपूर्ण घटक मानते हैं। जब तक शैक्षिक प्रक्रिया अधिक महत्वाकांक्षी नहीं होगी, अधिगम सम्भव नहीं होगा। एनपीई 2016 के निर्माण में सुझाव देने के लिए दिए गए कुछ प्रश्नों में अधिगम को मापने और शिक्षकों को बदलने के तरीक़ों को तलाशने पर ध्यान दिया गया। इन प्रश्नों में स्पष्ट रूप से, लेकिन कुछ हद तक अप्रत्यक्ष रूप से, शिक्षक की धारणा परीक्षण के घेरे में आ जाती है।

शिक्षक की धारणा

1968 के दस्तावेज़ ने शिक्षक के बारे में बात करते समय कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों को व्यक्त किया। इसमें कहा गया कि शिक्षकगण शैक्षिक उपक्रम का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा हैं और उन्हें समाज में सम्मानित स्थान की आवश्यकता है। उन्हें सीखने, विकसित होने और विस्तार करने की अकादमिक स्वतंत्रता होनी चाहिए। उनमें शैक्षिक योग्यता और कार्यक्षमता होनी चाहिए। यह और मुआवज़े और समानता पर लम्बा अनुभाग बताता है कि समझ यह थी कि शिक्षक एक स्वायत्त शिक्षक और शिक्षाशास्त्री के रूप में विकसित होगा और अपनी प्रक्रियाओं और रणनीतियों को खुद विकसित करेगा। यह तंत्र उसे यह सब कुछ करने के लिए प्रोत्साहित करेगा और सशक्त करेगा। लेकिन बाद में जो निरूपण हुआ वह क्षमता निर्माण पर किए गए विचार और वास्तव में शिक्षक पर चर्चा की भावना से उभरने वाले शिक्षक की धारणा के बिलकुल विपरीत है।

1986 की नीति में शिक्षक को महत्त्वपूर्ण बताया गया और शिक्षकों वाले अनुभाग में यह उद्धरण दिया गया था '...ऐसा कहा जाता है कि कोई भी व्यक्ति अपने शिक्षकों के स्तर से ऊपर नहीं बढ़ सकता है।' लेकिन उसी अनुच्छेद में यह कड़वी सच्चाई भी है : 'शिक्षक की स्थिति समाज के सामाजिक-सांस्कृतिक आचार को दर्शाती है।'

और इसी सामाजिक-सांस्कृतिक आचार में तेज़ी से गिरावट देखी गई है। इसलिए, विपरीत बयानों के बावजूद शिक्षक की धारणा गम्भीर दबाव से ग्रसित रही है, विशेष रूप से नव-उदारीकरण और 1986 की शिक्षा नीति के बाद से पिछले तीन दशकों में।

नीति में गर्व के साथ कहा गया कि 'सरकार और समुदाय को ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करने का प्रयास करना चाहिए जो शिक्षकों को रचनात्मक और सृजनात्मक बिन्दुओं पर प्रोत्साहित और अभिप्रेरित करने में मदद करें।' इसमें योग्यता पर आधारित व वस्तुनिष्ठ चयन के साथ एक ऐसी प्रणाली की बात की गई जो उचित वेतन और पारिश्रमिक निर्धारित करे और जिसमें खुली भागीदारी मूल्यांकन प्रणाली हो। इसमें वेतन और सेवा की स्थिति का वादा किया गया और कहा गया कि, 'वेतन उनकी सामाजिक व व्यावसायिक ज़िम्मेदारियों और पेशे में प्रतिभाओं को आकर्षित करने की आवश्यकता के अनुरूप होगा। पूरे देश में शिक्षकों के लिए समान आय, सेवा की स्थिति और शिकायत निवारण प्रणाली के वांछनीय उद्देश्यों तक पहुँचने के प्रयास किए जाएँगे।' नीति में पदोन्नति के लिए उचित अवसरों के साथ-साथ पुरस्कार और दण्ड के आचरण के लिए सुझाए गए मानदण्डों के बारे में भी बात की गई। तो शिक्षक राज्य का कर्मचारी बनने के रास्ते पर चल निकला लेकिन एक चेतावनी के साथ। 'शिक्षक शैक्षिक कार्यक्रमों के निर्माण और कार्यान्वयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहेंगे।'

यहाँ एक उल्लेखनीय बदलाव है : कई वादे किए गए हैं लेकिन उन्हें निभाया नहीं जाता। इसके साथ ही केवल एक कर्मचारी रूप में शिक्षक का विचार आकार लेता है ; 'बेहतर सौदा' और 'जवाबदेही' जैसे शब्द, बिना यह स्पष्ट किए कि जवाबदेही किसके लिए, प्रस्तुत किए जाते हैं। और फिर व्यापक समुदाय के लिए शिक्षा मुहैया कराने के लिए परियोजनाएँ आती हैं। भौतिक परिस्थितियों के कारण बाहर के शिक्षक गाँव में रहना पसन्द नहीं करते और उन परिस्थितियों को ठीक करने का प्रयास नहीं किया जाता तो इस विकल्प को बढ़ावा दिया गया कि उसी गाँव से किसी निवासी को शिक्षक बना दिया जाए। यह बात भी अच्छी लगी क्योंकि यह विकल्प सस्ता था, उस व्यक्ति को भाषा और बच्चों की संस्कृति का ज्ञान था और वह उनका क़रीबी हो सकता था।

लेकिन जैसा कि हम देख रहे हैं, राज्य को ऐसे विकल्प बहुत पसन्द हैं जो नियंत्रणकर्ताओं के अनुकूल हों। विचार और उनकी अभिव्यक्तियाँ, अनिवार्यता से दूर हटकर कुछ और ही बन जाती हैं क्योंकि उन्हें सुविधा के अनुसार परिवर्तित किया जाता है। इस नव-उदार वाली अवधि में गुणवत्ता में सुधार के लिए प्राथमिक और प्रारम्भिक शिक्षा के लिए निधि के उपयोग से शिक्षक का विचार बुरी तरह से प्रभावित हुआ। प्रयास गुणवत्ता पर आधारित था क्योंकि विश्वास यह था कि पहुँच के लिए तो बहुत कुछ किया गया है और जब तक गुणवत्ता बेहतर नहीं हो जाती तब तक भागीदारी में सुधार नहीं होगा क्योंकि अब यह ठहराव का सवाल है। राज्य प्रणाली को ग़ैर-कार्यात्मक, कठोर और तंत्र की दृष्टि से ग़ैर-सुधारणीय कहकर परिभाषित किया गया और समानान्तर संरचनाएँ स्थापित की गईं। शुरुआत में इन्होंने सार्वजनिक प्रणाली के सुधार में तेज़ी लाने का प्रयास किया लेकिन बाद में इसे बन्द करने की माँग हुई और सब कुछ समानान्तर निजी प्रणाली को सौंप दिया। वास्तव में इन्हें आरम्भ बिन्दु भी कहा जाता है क्योंकि वे तंत्र चलाने वालों को यह कहने की अनुमति देते हैं कि हमने सब कुछ किया, सब कुछ करने की कोशिश की है और कुछ भी काम नहीं करता है। यह बात भुला दी गई है कि चुने गए कार्यक्रमों और उनके कार्यान्वयन में उन लोगों को शामिल नहीं किया जाता है जिन्हें उन्हें चलाना है। प्रस्तावित चरण क्या हैं, उन्हें कैसे लागू करना है – इन सबके बारे में निर्णय लेने के किए ज़मीनी स्तर पर उनसे कार्य नहीं करवाया जाता। विकेन्द्रीकरण और भागीदारी का विचार क़रीबी निगरानी और मज़बूत केन्द्रीकरण के रूप में सिमट कर रह गया है क्योंकि ज़मीनी स्तर पर काम करने वाले कार्यकर्ताओं से यह

अपेक्षा नहीं की जाती कि वे बेहतर समाधान खोजने के लिए परिदृश्य का विश्लेषण करने में मदद करने के लिए विचार दें और वास्तविक स्थिति के बारे में बताएँ। इसके विपरीत उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे केन्द्रीय आदेशों को समर्थन दें और उनका पालन सुनिश्चित करें तथा केन्द्रीय समेकन के लिए 'अर्थहीन' आँकड़े इकट्ठा करें।

हम विपथ हुए हैं, लेकिन केवल इस बात पर ज़ोर देने के लिए कि शैक्षिक सुधार में एक प्रतिभागी के रूप में मान्यता प्राप्त शिक्षक केवल एक गौण व्यक्ति था। शैक्षिक उपक्रम में उनकी स्थिति और हिस्सेदारी धीरे-धीरे घटती गई क्योंकि शिक्षकों की श्रेणी में विभाजन या स्तरण में वृद्धि हुई। मिशन प्रणाली में पहुँच का विस्तार करने के स्पष्ट प्रयास में और आर्थिक कारणों से शिक्षक कम वेतन पाने वाला, अधिक असुरक्षित, स्तरीकृत और कमज़ोर हो गया। विभाजन या स्तरण के कारण नियमित शिक्षक की वैधता और उस पर होने वाले व्यय पर विवाद खड़ा हुआ। इससे एक अवांछित दबाव पड़ा, अक्सर अनचाही आलोचना हुई। सभी शिक्षकों को काम न करने वालों की संज्ञा दे दी गई और यह सब हुआ कुछ ऐसे लोगों की छवि के कारण जिनका प्रयोग अधिकारियों ने अन्य लोगों के प्रबन्धन के लिए और अन्य शिक्षकों से अपने लाभ के लिए किया। राजनेता कोई भी हो और राजनीतिक पदानुक्रम में उनका कोई भी स्तर हो, शिक्षक उनकी कृपा पर आश्रित थे और हैं। निष्पक्ष नियुक्तियों और क्षमता निर्माण के वादे के बावजूद, सरकारों ने शिक्षकों को राजनीतिक लाभ के लिए बेतरतीब रूप से नियुक्त किया या करने की इजाज़त दी। कुछ सरकारों ने शिक्षक तैयारी की सुविधाओं को बन्द कर दिया या इस बात का दावा करते हुए उनकी प्रभाविता कम कर दी कि शिक्षकों को प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है।

ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डीपीईपी) ने सेवाकालीन क्षमता निर्माण का कार्य शुरू किया लेकिन जल्द ही डीपीईपी एक मिशन (अभियान)- सर्व शिक्षा अभियान (एसएसए) बन गया। ऐसा नहीं है कि डीपीईपी के सभी प्रयास बेहतर थे, लेकिन एसएसए के तहत किए गए प्रयासों ने गहरी सनकवाद और बोरियत को बढ़ावा दिया। इसने शिक्षण समुदाय को निराश कर दिया क्योंकि इसके साथ में ये सारी बातें भी हुईं- शिक्षकों का विभाजन या स्तरण, उन्हें कम वेतन प्राप्त कर्मचारी समझना, कामचोर और मूर्ख समझना जिन्हें किसी के भी द्वारा इस स्थिति तक प्रशिक्षित (या प्रशिक्षित नहीं किया जा सकता था क्योंकि वे बदलने और सीखने के लिए तैयार नहीं थे) किया जा सकता था जहाँ राज्य खुद प्रशिक्षण के बारे में बात करने में हिचकिचाता है। शिक्षक शिक्षा में सुधार करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षक शिक्षा परिषद (एनसीटीई) का निर्माण बहुत अधिक धूमधाम के साथ किया गया। लगभग दो दशकों में इसने शिक्षक-शिक्षा को प्रमाण पत्र देने का स्वांग बना दिया है। प्रशिक्षण की डिग्री की अनिवार्यता और शिक्षक-शिक्षा के कॉलेजों को बेरोकटोक लाइसेंस देने के अभ्यास ने पूरी शिक्षक-शिक्षा प्रणाली का गहरा अनादर किया है।

न्यायमूर्ति वर्मा आयोग के साथ-साथ कई अन्य समितियों, नए पाठ्यक्रम और बीएड और एमएड कार्यक्रमों की अवधि में वृद्धि के बावजूद शिक्षक-शिक्षा को ठीक करने का कार्य असम्भव लगता है। डायट, एससीईआरटी, सीटीई, आईएएसई और एनसीटीई (या एनसीईआरटी इत्यादि) पर भी कई चर्चाएँ हुई हैं। इन सभी में एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु उभरकर आया है। और वह बिन्दु यह है कि इन्हें नौकरशाही नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए और इनका नेतृत्व ऐसे अच्छे शिक्षाविदों और प्रशासकों को करना चाहिए जिनके पास थोड़ी स्वतंत्रता हो। उनके पास पर्याप्त व्यक्ति और बजट होना चाहिए जिससे वे अपनी भूमिकाओं को निभाने में सक्षम हो सकें। विडम्बना यह है कि जब हम इन संस्थानों का उपयोग करके शैक्षिक सुधारों और शैक्षिक प्रक्रिया को शक्तिशाली बनाने की बात करते हैं, तो देखते हैं कि उनमें व्यक्ति, पर्याप्त धन और स्वायत्तता का अभाव है।

नई शिक्षा नीति के ताज़ा प्रयास स्पष्ट रूप से मानते हैं कि शिक्षा कोई ऐसी चीज़ नहीं है जिसे सार्वजनिक धन से पाया जा सके और इसलिए निजी क्षेत्र और कॉरपोरेट का प्रवेश होता है। अतः यह प्रयास किया जाता है कि कॉरपोरेट शिक्षा पर नीतिगत सुझाव दें। नौकरशाहों की तरह बिज़नेस करने वाले पूँजीपति ऐसे नए विशेषज्ञ हैं जो शिक्षा की समस्या के समाधान के बारे में सभी कुछ जानते हैं। जहाँ तक शिक्षकों की बात है तो उनके बारे में पक्षपातपूर्ण विचार हैं कि पुरस्कार और दण्ड के माध्यम से शिक्षकों पर नज़र रखनी चाहिए, उनका मूल्यांकन और निगरानी करना चाहिए और उन्हें नियंत्रित करना चाहिए- यानी शिक्षक क्षमता और स्वायत्तता के बिना शिक्षक की जवाबदेही के विचार को स्वीकृति मिल जाती है। नियंत्रण और निगरानी के बेहतर तरीक़ों की ओर अधिक झुकाव है और प्रेरक कारकों से सम्बन्धित कोई प्रश्न नहीं पूछा गया है। न ही निरुत्साहित होने के वैकल्पिक कारणों पर विचार किया गया है। तो इस प्रश्न को हल करने के लिए एक अलग विश्लेषण के आधार पर मॉडल अभी तक विकसित नहीं हुए हैं। दावा यह है कि शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के लिए शिक्षकों की क्षमता और उनकी प्रेरणा महत्त्वपूर्ण है। इतना ही नहीं इस बाते के दावे भी किए जाते हैं कि शिक्षकों को प्रेरित करने के लिए शिक्षक की कमी को सम्बोधित करने, सेवा-पूर्व और सेवाकालीन शिक्षकों के व्यावसायिक विकास में सुधार करने और पेशे के रूप में शिक्षण की स्थिति का संवर्धन करने के लिए पहल की जा रही हैं। केवल जिस बाधक कारक को मान्यता प्राप्त है वह

है, स्थानान्तरण और यह माँग की जाती है कि इसका उपाय भी बिना किसी विकल्प या मानवीय अन्तःक्रिया द्वारा किया जाए। यानी कि प्रबन्धन स्पष्ट रूप से और पूरी तरह से यांत्रिक और वस्तुनिष्ठ होना चाहिए! ऐसा कोई अन्य सुझाव या मुद्दा नहीं है जिसे विचारणीय या बेहतर तरीक़े से प्रबन्धित करने योग्य माना जाए।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी

1968 की नीति ने समाज में सन्निहित कुछ पुरातन मान्यताओं को छोड़कर आगे बढ़ने के लिए एक वैकल्पिक विश्व दृष्टिकोण और समझ बनाने के परिप्रेक्ष्य के साथ विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर ज़ोर दिया। इसने आर्थिक विकास के उद्देश्य से भी इनके बारे में बात की। इसमें ज़ाहिरा तौर पर तर्कसंगत और वैज्ञानिक सोच के सिद्धान्तों पर भारत के निर्माण की ओर ध्यान केन्द्रित किया गया था। विज्ञान और समझ पर ज़ोर अधिक था। यह विचार धीरे-धीरे 1986 की नीति में भी पहुँचा जिसमें विज्ञान का सामाजिक तत्व कम हो गया था। अब फ़ोकस क्षमताओं और मूल्यों जैसे कि जाँच-पड़ताल की भावना, रचनात्मकता, वस्तुनिष्ठता, प्रश्न पूछने का साहस, सौन्दर्य संवेदना के साथ-साथ विज्ञान को स्वास्थ्य, कृषि और दैनिक जीवन से जोड़ने के लिए विकसित करने पर था। इसलिए जहाँ एक ओर यह एक व्यापक क्षेत्र प्रतीत हो सकता है वहीं दूसरी ओर महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सामाजिक और तर्कसंगत दृष्टिकोण को छोड़ दिया गया जिस पर पहले ज़ोर दिया गया था।

1992 की कार्य योजना में भी प्रौद्योगिकी पर ज़ोर दिया गया और यह बात और भी स्पष्ट रूप देखने में आई क्योंकि इसमें इस पहलू पर एक पूरा अनुभाग था। परिवर्तन स्पष्ट है, अब ज़ोर विज्ञान और विज्ञान से जुड़ी विधि, हालाँकि यह अन्य विषयों में भी समान रूप से मौजूद है, से हटकर प्रौद्योगिकी और आर्थिक विकास के लिए इसके उपयोग पर दिया गया। शिक्षा और संवेदनशीलता को सम्बोधित करने के बजाय, अब फ़ोकस इस बात पर है कि यह अन्य विचारों के शीघ्र प्रसार के लिए एक उपकरण है।

नई नीति के निरूपण में चर्चा और इनपुट के लिए उचित क्षेत्र के रूप में विज्ञान या किसी अन्य विषय का उल्लेख तक नहीं है। इसमें तकनीकी उपकरणों और संचार प्रणालियों के अलावा केवल शिक्षण कला महत्त्वपूर्ण है। 2015 के निरूपण में बदलाव स्पष्ट है- यह मानता है कि हमें व्यावसायिक शिक्षा की ओर आगे बढ़ना चाहिए और चर्चा का एकमात्र विषय यही है कि किस हद तक आगे बढ़ें। केवल एक प्रश्न की अनुमति है कि क्या इसे एक विषय के रूप में रखा जाए या मुख्य विषयों के हिस्से के रूप में एवं हम इसे और अधिक रोचक कैसे बना सकते हैं। यह स्पष्ट रूप से कहता है कि शिक्षा को चाहिए कि वह लोगों को व्यवसाय के लिए तैयार करे। संवैधानिक नागरिक से देश और नियोक्ता के लिए भी आर्थिक संसाधन बनने की बात स्पष्ट रूप से कही गई है। तो जिस बात को महत्त्व दिया गया वह स्पष्ट है – हर किसी को अधिगम के न्यूनतम स्तर तक पहुँचने दें ताकि विकास और प्रगति के लाभों का सबसे अच्छा उपयोग किया जा सके। और अब लोग लोकतांत्रिक राष्ट्र के संविधानी नागरिक नहीं हैं बल्कि विकास के इंजन के लिए कारखानों और भट्टियों में उपयोग की जाने वाली कच्ची सामग्री की तरह संसाधन हैं। नागरिक की धारणा और शिक्षा की रूपरेखा तथा इसके साथ जुड़ी हर चीज़ समय के साथ ही स्पष्ट रूप बदल गई, न केवल नीति और इसके प्रकाशन में बल्कि अभिव्यक्ति की प्रभाविता में भी ताकि आज अमूर्त राष्ट्र और नियोक्ता संविधानी नागरिक से उच्च स्तरीय बना दिए जाएँ। उन्हें दिए प्रस्ताव खाँचों के अनुरूप होना चाहिए और जब-जब खाँचे बदलें तो उसके अनुसार खुद को बदलने के लिए पर्याप्त कुशल होना चाहिए।

समान स्कूल प्रणाली

1968 के दस्तावेज़ में लोकतांत्रिक नागरिकता के लिए समान स्कूल प्रणाली को आवश्यक बताते हुए इस पर ज़ोर दिया गया था। इसने इंगित किया कि जिस शिक्षा प्रणाली में निजी स्कूल भी चलाए जाते हों वह असाम्यपूर्ण ही होगी। इसमें कहा गया है कि अमीर लोग तो अपने बच्चों के लिए सर्वश्रेष्ठ शिक्षा खरीदने में सक्षम हैं जबकि ग़रीबों को निम्न गुणवत्ता वाले स्कूलों में जाना पड़ता है। इस प्रकार की स्थिति एक समानतावादी समाज के आदर्श के लिए अलोकतांत्रिक और असंगत है। यह योग्यता पर आधारित चयन के विचारों पर भी सवाल उठाता है। 1968 की नीति इसे गम्भीरता से उजागर करती है: 'कभी-कभी उनमें (ग़रीबों में) से सर्वाधिक योग्य बच्चे भी इन अच्छे स्कूलों में नहीं जा पाते, जबकि आर्थिक रूप से विशेषाधिकार प्राप्त माता-पिता अपने बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा 'खरीद' सकते हैं। यह बात न केवल ग़रीबों के बच्चों के लिए बल्कि अमीर और विशेषाधिकार प्राप्त समूहों के बच्चों के लिए भी ख़राब है। इस प्रकार इसमें इस बात पर ज़ोर दिया गया कि स्कूल ऐसे होने चाहिए कि जो सभी बच्चों को अपने यहाँ पढ़ने की अनुमति दें भले ही उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और उनके आर्थिक साधन कुछ भी हों।

1986 की नीति और 1992 की कार्य योजना में समान स्कूल का कोई उल्लेख नहीं था और समानता के लिए भी सरोकार नहीं था। इसके बजाय इसमें अधिकांश लोगों के लिए न्यूनतम संरचना और सुविधाओं को उपलब्ध कराने की योजना थी। जो ग़रीब लोग सिस्टम को हराकर तथाकथित 'प्रतिभा खोज' में चुने जाते, उनके लिए नवोदय विद्यालय थे। नीति के लिए न्यायपूर्ण दृष्टिकोण अपनाते हुए हम यह कह सकते हैं कि

हालाँकि इसमें समान स्कूल के प्रयासों को अव्यावहारिक कहकर छोड़ दिया गया लेकिन इसमें कुछ ठोस योजनाएँ बनाई गईं जिसके तहत बच्चों को कुछ हद तक गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की बात कही गई और इसके लिए सार्वजनिक प्रतिबद्धता का वचन दिया गया। इस कार्य योजना के लिए बिना किसी दृढ़ विश्वास के कभी-कभार छिटपुट प्रयास हुए। जो लोग इसे करने के लिए ज़िम्मेदार थे उन्हें न तो इसकी व्यावहारिकता पर भरोसा था और न ही उन्होंने इसे करना महत्त्वपूर्ण समझा। इन कार्यों में न तो उनकी भागीदारी थी और न ही उन्हें कोई रुचि थी क्योंकि मिशन प्रणाली में किए गए इन प्रयासों में उन्हें शामिल नहीं किया गया था और उनसे यह उम्मीद भी नहीं की गई कि जिन लोगों के लिए यह काम किया जाना है उनसे वे निकटता के साथ बातचीत करें। सभी बच्चों की शिक्षा पर सार्वजनिक हित की बजाय व्यक्तिगत हित के रूप में विचार करने के दबाव के साथ पब्लिक स्कूल और निजी प्रणाली को समानता देने का दबाव भी था और वह भी एक ऐसे लेंस के माध्यम से जो हमेशा सार्वजनिक विद्यालय को कमतर दिखाता है। इन सब बातों ने स्कूल प्रणाली को काफ़ी हानि पहुँचाई। इसलिए नई शिक्षा नीति विकसित करने की प्रक्रिया ने समझदारी से स्कूल प्रबन्धन पर प्रतिक्रिया माँगी। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वंचित वर्गों की शिक्षा का उल्लेख उन्हें शिक्षा में शामिल करने के अर्थ में है। साम्यता का सिद्धान्त भुला दिया गया है और साम्यता के साथ सभी को शिक्षित करने में दृढ़ विश्वास की कमी साफ़ दिखाई देती है।

वर्तमान रुझान और सीसीई

कार्रवाई के क़दम आगे बढ़ रहे हैं। केन्द्रीय मंत्री ने एकदम से फैसला किया कि एनसीईआरटी का पाठ्यक्रम बहुत अधिक है और इसे 50% तक कम कर देना चाहिए। उन्होंने किसी से यह पूछने की ज़रूरत ही नहीं समझी कि पाठ्यक्रम ऐसा क्यों था और इसे वर्तमान स्तर तक कम करने के लिए कौन-सी लड़ाई लड़ी गई थी। उन्होंने यह नहीं पूछा कि एनसीईआरटी की किताबों की तुलना में राज्य सरकार की किताबों और निजी स्कूल की किताबों और पाठ्यक्रम में इतनी अधिक सामग्री क्यों थी और क्या पहले उन्हें सम्बोधित नहीं किया जाना चाहिए?

दिल्ली सरकार ने फैसला किया कि सफलता सुनिश्चित करने का सबसे अच्छा तरीक़ा बच्चों को अधिक सीखने वालों और कम सीखने वालों में विभाजित कर देना है। ऐसा करने के औचित्य को साझा नहीं किया गया और ऐसा करने के सम्भावित प्रभावों के बारे में भी पूरी तरह से सोचा नहीं गया। सरकार ने जो दस्तावेज़ निकाला उसमें आयु, स्तर, राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के साथ इसके सम्बन्ध, संविधान और यहाँ तक कि शिक्षण कला जैसे अकादमिक मुद्दे थे ही नहीं। जो औचित्य बताया गया वह बहुत कमज़ोर और परेशान करने वाला था। इन सवालों के बारे में सोचना बहुत महत्त्वपूर्ण है और फिर उसके बाद ही निर्णय लेना चाहिए। किसी भी प्रणाली के लिए यह बात अच्छी नहीं है कि चीज़ों को ठीक से लागू करने, समझने और अनुकूलित करने से पहले ही उन्हें लागू कर दिया जाए और फिर हटा दिया जाए। सतत और व्यापक मूल्यांकन (सीसीई) इसका एक उदाहरण है।

आकलन और सीसीई से सम्बन्धित बहस परिष्करण, तुलना और रैंकिंग पर केन्द्रित है। मुद्दा यह नहीं कि बच्चा या कोई भी व्यक्ति जो कुछ कर रहा है उसे समझकर सीखे कि वह जो कुछ कर रहा है वह ठीक है या नहीं या उसने कहाँ गलती की; मुद्दा तो यह है कि सीसीई कारगर क्यों नहीं हुई। सीसीई पर उठाए गए सवाल पहले से ही यह मानकर चलते हैं कि यह पहल पूरी तरह विफल रही है और इससे कोई लाभ नहीं हुआ है। इस प्रकार की आलोचना में इन प्रश्नों के उत्तर शामिल नहीं हैं कि उनके विचार में सीसीई से कैसे मदद मिल सकती है और सीसीई के लाभ क्या हैं। ज़मीनी स्तर पर कार्यरत लोगों के विचार पूछने का कोई प्रयास नहीं किया गया कि आकलन प्रणाली किस तरह से और अधिक सूक्ष्म बारीक़ियों की अभिव्यक्ति कर सकती है तथा बच्चों को उनकी सोच और नवाचार के लिए पुरस्कृत कर सकती है। इस प्रकार के बहिष्करण से न केवल मौजूदा शिक्षार्थियों पर बल्कि हमारे समाज के ताने-बाने पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ता है।

सारांश

जैसा कि स्पष्ट है सरकारी पहल में प्रवृत्ति हमेशा कमज़ोर रही है और कभी-कभी तो इनमें साम्यता और समावेशन के कुछ महत्त्वपूर्ण विचारों को छोड़ भी दिया जाता है। इन पहल में संवैधानिक मूल्यों के साथ शिक्षा की व्यापक और सुसंगत दृष्टि की सतत कमी-सी दिखाई देती है और सबको दी जा सकने वाली न्यायसंगत शिक्षा के महत्त्व और सम्भावना में भी इनका कोई भरोसा नहीं दिखाई देता ; यहाँ तक कि नीति के दस्तावेज़ भी धीरे-धीरे इन विचारों को पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। ज़मीनी स्तर पर कार्यान्वयन के समय नीति में बताए गए मुद्दों को सम्बोधित नहीं किया जाता और जितने बजट का वादा किया गया था, उसका केवल एक छोटा-सा हिस्सा ही दिया जाता है। हस्तक्षेपों के अनियमित शीर्षों का डिज़ाइन एक अव्यवस्थित और असन्तोषजनक कल्पना का परिणाम लगता है जिसमें शिक्षा प्रणाली की उस स्पष्ट और सुसंगत दृष्टि की कमी है जिसे स्कूल प्रणाली में रहने वाले लोग समझते हैं।

इन गतिविधियों में तुरत-फुरत समाधान पर ध्यान दिया गया जो संक्षिप्त अवधि के लिए प्रणाली के छोटे घटकों पर लक्षित थे। ये गतिविधियाँ, जिनमें से कुछ विरोधाभासी सिद्धान्तों पर

आधारित थीं, एक ही स्कूल में समानान्तर रेखाओं पर चल सकती थीं, उसी तत्व पर ध्यान केन्द्रित कर सकती थीं, और उसी शिक्षक से विपरीत दिशाओं में जाने का आग्रह कर सकती थीं। इस खण्डित दृष्टिकोण में, प्रणाली को सभी हस्तक्षेपों के बारे में पता तक नहीं था और जिन शिक्षकों व स्कूलों को इन्हें लागू करना था उन्हें पक्के तौर पर यह नहीं मालूम था कि उनसे जो कुछ करने के लिए कहा जा रहा है वे वैसा क्यों करें। इनमें से बहुत-सी पहल स्वतंत्र निजी लोगों द्वारा बिना एक-दूसरे से बात किए की जा रही थीं और राज्य के भीतर स्वतंत्र विभागों द्वारा सम्भाली जा रही थीं।

आकलन और निगरानी की माँग बढ़ती है और विफलता की ज़िम्मेदारी शिक्षक पर ही रहती है। शैक्षणिक व पाठ्यचर्या एजेंसी और स्कूल व शिक्षक की स्वायत्तता को शामिल न करने के साथ शिक्षा की बढ़ती हुई संकीर्ण अभिव्यक्ति भी जुड़ी हुई है। प्रणाली के प्रशासकों और खण्डशः लक्ष्यों के लिए नई विधियों और तकनीकों के अधिवक्ताओं ने फैसला कर लिया है कि शिक्षक काम नहीं करते हैं और वे नहीं सोच सकते, इसलिए उन्हें निर्देशों का पालन करना होगा। शिक्षक के काम को समझने और चुनौतियों को समझने के लिए कोई सरोकार और प्रयास नहीं किया गया है क्योंकि प्रणाली असफल विचारों और विशेषज्ञों के एक समूह से दूसरे समूह पर जाती है, यह स्वीकारे बिना कि गुणवत्तापूर्ण सार्वभौमिक शिक्षा पाने का एकमात्र तरीक़ा यह है कि शिक्षकगण सशक्तता और 'स्वायत्तता' (स्वेच्छाचारिता नहीं) के साथ कार्य करें और उन्हें प्रशासन और व्यवस्था के सक्षम परितंत्र का अनुसमर्थन मिले।

Resources:

1 Kothari Commission report 1966 and the National Policy Of Education 1968

2 National Policy Of Education 1986 and the Programme of action 1992

3 National framework for Elementary and Secondary education 1988 - National Council of Educational Research and Training (NCERT)

4 Dewan Hriday Kant, New education policy fails to address issues of equity https://www.villagesquare.in/2016/12/05/new-education-policy-fails-address-issues-equity/

5 Some terms used

DPEP- District Primary School Program

NCTE- National council of Teacher Education

NCERT- National Council of Educational Research and Training

SCERT -National Council of Educational Research and Training

DIET – District Institute of Education and Training

CTE – College of Teacher Education

IASE- Institute of advanced studies in education

SSA – Sarva Shiksha abhiyan

NPE – National Policy of Education

NCF – National Curricular Framework

I am thankful to Nimrat Kaur of the Azim Premji Foundation for the inputs of ideas and organisation of this article

हृदय कान्त दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के अनुवाद पहल में कार्यरत हैं। वे एकलव्य के संस्थापक समूह के सदस्य और विद्या भवन सोसाइटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार रहे हैं। वे 40 से अधिक वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न प्रकार से और विभिन्न पहलुओं पर कार्य करते रहे हैं। विशेष रूप से वे शैक्षिक नवाचार और राज्य शैक्षिक संरचनाओं में संशोधन के प्रयासों से जुड़े रहे हैं। उनसे *hardy.dewan@gmail.com* पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** नलिनी रावल